महात्मा गाँधी एवं क्रांतिकारी

डॉ. भगवानदास अहिरवार
प्राचार्य
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

जब हम अपने देश के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के पृष्ठ पलटते हैं। तो हमें ज्ञात होता है कि उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का ध्येय अलग-अलग बल्कि एक दूसरे के विपरीत होने के बावजूद भी इन विचारधाराओं के प्रति, इनके नेताओं के प्रति आम जनता में अपार श्रद्धा एवं गहरी सहानुभूति थी। हाँ जहाँ बापू के नेतृत्व में प्रवाहित सत्य एवं अहिंसा की विचारधारा विचार विनिमय संवाद के मामले में तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत के नजदीकी थी, वहीं क्रांतिकारी विचारधारा भूमिगत थी। यद्यपि महात्मा गाँधी एवं क्रांतिकारियों की एक रणनीति व कार्यक्रम में समानता थी।

मुख्य शब्द - क्रंतिकारी, आन्दोलन, महात्मा गाँधी, अहिंसा।

वर्तमान युग में हम जिस आजादी का उपयोग कर रहे हैं वह हमारे सदियों से सजोकर कर रखी गई धरोहर नहीं, अपितु 1857 ई. के से प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 ई. से स्वतंत्रता प्राप्ति तक के 90 वर्षों के निरंतर संघर्ष एवं बलिदानों का प्रतिफल है। हमारी आजादी की संघर्ष यात्रा में दो प्रतिगामी विचारधाराओं ने एक साथ किंतु अलग-अलग मार्ग पर विचरण कर ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ संघर्ष किया। इनमें एक विचारधारा थी महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्य एवं अहिंसा के बल पर ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन जैसे कार्यक्रमों को गति देने वाली विचारधारा । वहीं दूसरी विचारधारा थी - चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद विस्मिल, अशफाक उल्ला खां, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, नेताजी सुभाष चंद्र बोस इत्यादि क्रांतिकारियों के नेतृत्व में बम, पिस्तौल एवं बंदूक की गोली के बल पर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष छेड़ने वाली विचारधारा। यद्यपि इन दोनों विचारधाराओं के मार्ग एवं इस पर चलने के साधन बिल्कुल एक दूसरे से भिन्न थे, परंतु मंजिल एक थी ब्रिटिश हुकूमत का अंत तथा स्वतंत्रता प्राप्ति।

आजादी आंदोलन के इतिहास का अध्ययन करने वाले अध्येयताओं के समक्ष बार-बार यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि जब बापू की विचारधारा विचार विमर्श, संवाद, मेल मिलाप के कारण ब्रिटिश सत्ता के समीप थी, तब सरदार भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव, राजगुरु इत्यादि क्रांतिकारियों को महात्मा गांधी ने गांधी-इरविन समझौता के समय फांसी से क्यों नहीं बचाया? क्रांतिकारियों के प्राणों की रक्षा के लिए गांधी जी ने कोई संघर्ष क्यों नहीं छेड़ा? आध्येयताओं के एक वर्ग का ऐसा भी मानना है कि यदि महात्मा गांधी चाहते तो गांधी इरविन समझौते के समय इन क्रांतिकारियों को जेल से रिहा किए जाने की पूर्व शर्त रख सकते थे। लार्ड इरविन पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर इन क्रांतिकारियों को जीवनदान दिला सकते थे। लेकिन जीवनदान तो दूर गांधी ने तो इन्हें राजनीतिक बंदियों

की सूची में भी नहीं रखा था। ऐसा क्यों? इतिहास के गर्त में ही जाकर ही हमें इस प्रश्न का उत्तर खोजना होगा।

पहिले हमें महात्मा गाँधी की सत्य एवं अहिंसा की आराधना के बारे में जान लेना उचित होगा।

देश की आज़ादी के आंदोलन में प्रवेश करने के पूर्व ही अपने दक्षिण अफ्रीकी प्रवास में गाँधी वहाँ की ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध सत्याग्रह का सफल प्रयोग कर चुके थे। यहाँ सत्य एवं अहिंसा के बारे में बापू के प्रयोगों की उन्हीं की आत्मकथा के कुछ अंशों को जानना उचित होगा।

महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि हाईस्कूल पढ़ने के दौरान वे अपने एक मित्र के सम्पर्क में आए जिसने उन्हें बताया कि, "हम मांसाहार नहीं करते, इसलिए प्रजा के रूप में हम निर्वीय हैं। अँग्रेज हम पर इसलिए राज्य करते हैं कि वे मांसाहारी हैं। मैं मांसाहारी हूँ, सो देखो मैं कितना मजबूत हूँ। कितना दौड़ सकता हूँ। मासांहारी को फोड़े नहीं होते, होने पर झट अच्छे हो जाते हैं। हमारे शिक्षक मांस खाते हैं। प्रसिद्ध व्यक्ति खाते हैं तो क्या बिना सोचे समझे खाते हैं; खाकर देखो कितनी ताकत आ जाती है।"[1] 'मेरे मस्तिष्क पर इन बातों का पूरा-पूरा असर हुआ, मानने लगा मासांहार अच्छी चीज है; उससे बलवान बनूँगा। अतः मासांहार करने का दिन निश्चित हुआ।"[2] नदी की तरफ एकांत का कोना खोजा गया जहाँ कोई देख न सके। मांस व डबल रोटी का सेवन किया। मांस चमड़े जैसा लग रहा था। खाना असम्भव हो गया। मुझे कै हो गई; खाना छोड़ देना पड़ा। रात्रि में नींद नहीं आई, ऐसा महसूस होता था कि शरीर के अंदर ही बकरा जिंदा रो रहा हो, लेकिन मैं दृढ़ था मुझे तो मांसाहार करना ही है। हिम्मत नहीं हारनी है। मित्रों ने मांस को अलग-अलग ढंग से पकाने और सजाने का प्रबंध किया। नफरत कम हुई, बकरे की दया छूटी मांस खाने वाले पदार्थ खाने में स्वाद आने लगा। इस तरह एक साल बीता और पांच छः बार मांस खाने को मिला होगा।"[3]

अपनी इसी आत्मकथा में बापू ने स्वीकार किया है अपने स्कूल के दिनों में वे संयम से न रह सके तथा जब उनके पिताजी मृत्यु सैया पर थे, वे उस समय अपनी पत्नी के साथ वासना में लीन थे। वकील के रूप में न्यायालय में जाने के लिए अपने पहिले मुकदमे के बारे में बापू लिखते हैं कि, "स्माल कॉज कोर्ट जाने हेतु मुझे ममीबाई का पहला मुकदमा मिला। प्रतिवादी की ओर से जिरह करनी थी। मैं खड़ा हुआ तो पैर काँपने लगे, सिर चकराने लगा, मानो अदालत घूम रही हो, सवाल सूझते ही नहीं थे। मैं बैठ गया। मैंने दलाल से कहा मुझसे यह मुकदमा नहीं चल सकेगा। आप पटैल को सौंपिए, मुझे दी हुई फीस वापिस ले लीजिए।"[4] क्या कोई ऐसा व्यक्ति जिसे राजनीतिक संत कहा गया था। वह अपने जीवन के बारे में ऐसी निजी बातें सार्वजनिक कर सकता था? यही गाँधी की सत्य की आराधना थी। अब आइए ज़रा अहिंसा के बारे में भी इन्हीं की आत्मकथा से एक-दो प्रसंग जान लेते हैं।

अपने दक्षिण अफ्रिकी प्रथम प्रवास के दौरान महात्मा गाँधी अपने मुवकिल सेठ अवदुल्ला के मुकदमे के सिलसिले में नेटाल के डरबन शहर से प्रिटोरिया जा रहे थे। ट्रेन लगभग रात्रि के नौ बजे नेटाल की राजधानी मेरिट्सवर्ग पहुँची। गाँधी जी ट्रेन के जिस डिब्बे में सफर कर रहे थे उसमें एक यात्री आया। उसने गाँधी की तरफ देखते हुए उन्हें अपने से निम्न वर्ग का पाकर परेशान होते हुए बाहर निकल गया। थोड़ी देर में एक रेलवे का अफसर आया, उसने गाँधी को तीसरे दर्जे के आखरी डिब्बे में जाने को कहा। गाँधी जी ने अपना प्रथम श्रेणी का टिकिट दिखाया, वह नहीं माना तथा गाँधी द्वारा प्रथम श्रेणी में ही डरबन से बैठे रहने तथा आगे इसी डिब्बे में यात्रा जारी रखने की जिद किए जाने के कारण अफसर के आदेश पर सिपाही ने सामान सहित गाँधी को गाड़ी से नीचे प्लेटफार्म पर

धक्का देकर उतार दिया गया।"[5] गाँधी जी लिखते हैं कि इस अपमान के बाद अपना हैण्डबैग लेकर वेटिंग रूम में बैठ गए। सर्दी का मौसम था, मेरा ओवरकोट मेरे सामान में था। जिसे मैंने हाथ नहीं लगाया था अपमान की वजह से सामान मांगने की हिम्मत नहीं हुई और सारी रात ठंड से कांपते हुए विचार करता रहा कि मुझे जो कष्ट एवं अपमान सहना पड़ा है, वह गहराई तक बैठे हुए महारोग का लक्षण है और यह महारोग है रंग भेद। यदि मुझे में यह गहरे रोग को मिटाने की शक्ति हो तो उसका उपयोग करना चाहिए। ऐसा करते हुए जो कष्ट सहना पड़े सो सहना चाहिए"[6] ऐसा निश्चय कर गांधीजी सुबह दूसरी ट्रेन से आगे बढ़ गए लेकिन गांधीजी का अपमान यहीं नहीं रूका। इसी यात्रा में अपमान की दूसरी घटना घटित हुई। ट्रेन सुबह चार्ल्सटाउन पहुंची तथा चार्ल्सटाउन से जोहानन्सबर्ग के लिए उस समय ट्रेन सेवा नहीं थी। घोड़ो की सिरकम थी जिसका विधिवत टिकट उनके पास था, परंतु सिरकम के चालक ने गांधीजी के टिकट को देखते हुए देर से पहुंचने के कारण इसके रद्द होने की बात कही। गांधीजी लिखते हैं किसी दूसरे कारण से यह बात कही गई थी। यात्री सब सिरकम के अंदर बैठे लेकिन मुझे कुली समझकर गोरे यात्रियों के साथ अंदर ना बैठा कर सिरकम के बाहर कोचवान के बाजू में बैठाया गया तथा सिरकम का मुखिया, जिसे वहां बैठना था वह अंदर जाकर यात्रियों के साथ बैठ गया। मैं समझ गया कि यह मेरा अपमान है पर इस अपमान को भी पी जाना उचित समझा। रास्ते में अंदर बैठे सिरकम के मुखिया को सिगरेट पीने की तलब लगी अतः उसने कोचवान के बाजू में गांधी जी की सीट पर बैठकर उसने उनसे एक मैले से बोरा जो कोचवान के पैर रखने के पहिये के पास वाले परिया पर बिछाते हुए गांधीजी को उस पर बैठने को कहा। गांधीजी ने इसे और अपमान समझकर उस पर बैठने में अपनी असमर्थता जता ही रहे थे कि उनके ऊपर चांटों की वर्षा होने लगी। बांह पकड़कर नीचे खींचा जाने लगा। गांधी जी ने अपनी पूरी ताकत के साथ उन्हें पकड़ लिया उन्हें खींचा जा रहा था, मारा जा रहा था, गालियां दी जा रही थी। बाद में यात्रियों के हस्तक्षेप के बाद उसने गालियां व पिटाई बंद की, किंतु रास्ते भर वह अत्याचारी सिरकम मुखिया गांधी की तरफ क्रोध भरी नजरों से देखता रहा।"[7]

इस प्रकार हम देखते हैं दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी चूँकि एक प्रसिद्ध व्यापारी अब्दुल्ला सेठ के वकील थे और यदि वे चाहते अपने साथ हुए इन हिंसक अपमानों का जवाब दे सकते थे, लेकिन वह तो अहिंसा के पुजारी थे, यही कारण है कि भारतीय राजनीति में गांधीजी यद्यपि ब्रिटिश सरकार के सहयोगी के रूप में प्रवेश करते हैं। बाद में सरकार द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में किए गए वायदों से मुकरने एवं जलियांवाला बाग एवं अन्य अत्याचारों को देखकर उस सरकार के विरुद्ध ही असहयोग आंदोलन छेड़ देते हैं तथा ऐसी स्थिति में जब असहयोग आंदोलन पूरे देश की राजनीति में तूफान आ गया था, अचानक 5 फरवरी 1922 को गोरखपुर के चौरी-चौरा में हिंसक भीड़ द्वारा थाना जलाए जाने के फलस्वरूप 22 पुलिस वालों की मौत होने पर अर्थात असहयोग आंदोलन में हिंसा का समावेश मानकर आंदोलन को ही स्थगित कर देते हैं। इस प्रकार अहिंसा महात्मा गांधी के विचार एवं कर्म का मूल आधार था। आइये अब हम हमारे क्रांतिकारियों द्वारा देश की आजादी के लिए किए गए दो चार कार्यों पर दृष्टिपात करते हैं ...

1920 में जेल से रिहा होने के पश्चात सतीश चंद्र सन्याल ने भारत के सारे क्रांतिकारी दलों को संगठित करके Hindustan Democratc League नामक संगठन की स्थापना की। उसके नेतृत्व में चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह, अशफाक उल्ला खान, राजेंद्र लाहिड़ी, योगेशचंद्र, बटुकेश्वर दत्त जैसे क्रांतिकारी सक्रिय थे, जो ब्रिटिश सरकार को दमन एवं हिंसा का जवाब हथियारों के बल पर हिंसा में देना चाहते थे। जिसके लिए विपुल

धन एवं अन्य संसाधनों की आवश्यकता थी। अतः धन पूर्ति कैसे हो, इस पर विचार करने के लिए मेरठ में क्रांतिकारियों की बैठक हुई। बैठक में योगेशचंद्र ने डकैती डालने की योजना प्रस्तुत की जिसे जनता में दल की छवि धूमिल होने की संभावना के चलते निरस्त कर दिया गया। पं. रामप्रसाद बिस्मल द्वारा सराहनपुर से लखनऊ जाने वाली 8 डाउन पैसेंजर ट्रेन में रखे खजाने को लूटने की योजना प्रस्तुत की गई, जिसे सभी साथियों ने स्वीकार कर 09 अगस्त 1925 को कानपुर से आठ किलो मीटर दूर 'काकोरी' में गाड़ी में रखे सरकारी खजाने को लूट लिया। इस कार्य में क्रांतिकारियों को 8600 रूपये मिला।"[8] सरकारी खजाने की सशस्त्र पहरे में हुई डकैती से सरकार बौखला गई। सभी क्रांतिकारी पकड़ लिए गए। लखनऊ की अदालत में चले मुकदमे में बिस्मल, लाहिड़ी, रोशन सिंह, असफाक उल्ला खाँ को फाँसी की फंदे पर चढ़ा दिया गया।

30 अक्टूबर 1928 को लाहौर पहुँचे साइमन कमीशन का प्रबल विरोध करने के लिए नरमवादी नेता लाला लाजपत राय के नेतृत्व में सरदार भगत सिंह, सुखदेव, यशपाल, भगवतीचरण, धनवन्ती, एहसान आदि क्रांतिकारी इकट्ठे हुए। इस विरोध में पुलिस सुपरिटेंडेंट स्कॉट के आदेश पर पुलिस अधिकारी जे.पी. साण्डर्स द्वारा किए गए भीषण लाठी प्रहारों से लाला लाजपत राय बुरी तरह घायल हो गए तथा बाद में 17 नवम्बर 1928 को उनकी मृत्यु हो गई।"[9]

लाला लाजपत राय भले ही नरम दल के नेता थे, लेकिन क्रांतिकारियों को उनकी इस प्रकार से मौत असहनीय थी। अतः लाहौर के मंजंग हाऊस में 10 दिसम्बर 1928 को क्रांतिकारियों की बैठक हुई"[10] जिसमें लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए उन पर भीषण लाठी चार्ज का आदेश देने वाले पुलिस सुपरिटेंडेंट स्कॉट को गोली से उड़ाने का फैसला किया गया। फैसले की क्रियान्विती के लिए चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में कार्य योजना बनाई गई तथा सत्रह दिसम्बर 1928 के दोपहर क्रांतिकारियों ने कोतवाली के ही समक्ष घात लगाकर स्कॉट की भूल में जे.पी. साण्डर्स को राजगुरू व तत्पश्चात भगत सिंह ने गोलियों से भून दिया। पीछा करने के चक्कर में राजगुरू की ही पिस्तौल से सिपाही चन्दनसिंह मारा गया। यद्यपि इन हत्याओं के बाद क्रांतिकारी लाहौर से बच निकलने में सफल हुए। किसी की भी उस तात्कालिक समय में गिरफ्तारी नहीं हो सकी।

असहयोग आन्दोलन ही स्थिगित हो गया हो लेकिन आए दिन होने वाले सरकार के खिलाफ प्रदर्शनों, हड़तालों व आंदोलनों से सरकार तंग आ गई थी। अतः इन सब पर रोक लगाने के वास्ते सरकार सेन्ट्रल असेम्बली में 'लोक सुरक्षा विधेयक' एवं 'औद्योगिक विवाद विधेयक' लाने वाली थी। क्रांतिकारियों को विश्वास था कि भले ही इन विधेयकों का सदन में कांग्रेसी नेता विरोध करें, लेकिन गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग कर इन्हें अमल में ले आ जाएगा। अतः इन विधेयकों को रोकने एवं सरकार व आम जनता को हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ की विचारधारा उद्देश्यों से अवगत कराने के लिए सेन्ट्रल असेम्बली में बम विस्फोट कर अपने को गिरफ्तार कराने का निर्णय काफी विचार विमर्श के बाद लिया गया। योजना को अंजाम देने की कुबार्नियों की प्रतिस्पर्धा के मध्य भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को चुना गया। सदन की खुफिया जानकारी एकत्रित करने का दायित्व जयदेव को सौंपा गया।

तय योजना के अनुरूप 08 अप्रैल 1929 को सेन्ट्रल असेम्बली का सत्र शुरू होते ही जैसे ही सर जॉन सुऊस्टर की उपर्युक्त विधेयकों को गवर्नर जर्नल द्वारा अपने विशेषाधिकारों के तहत पास किए जाने के बाद तत्काल इनके प्रभाव में आने की घोषणा पूरी हुई ही नहीं थी कि भगतसिंह व बटुकेश्वर ने एक के बाद एक दो बम सेन्ट्रल असेम्बली की दीवार पर फेंक कर विस्फोट कर दिया। बमों के धुएं के बीच हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक समाजवादी सेना

के उद्देश्यों व कार्यक्रमों के छपे हुए पर्चे भी उड़ाये गए। इंकलाब जिन्दाबाद के नारों के बीच इन दोनो क्रांतिकारियों ने अपनी पिस्तौल स्वयं आगे की मेज पर रखकर स्वयं को गिरफ्तार करा लिया। आगे चलकर सेंटर असेंबली में बम फेंकने के आरोप सरदार भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त को काले पानी की सजा तथा जेपी सांडर्स की हत्या के आरोप में राजगुरु सहित इन दोनों क्रांतिकारियों को 23 मार्च 1931 को फांसी के फंदे पर लटका दिया गया।

इसके पूर्व क्रांतिकारियों द्वारा लाहौर की सेंट्रल जेल में सजा काट रहे इन क्रांतिकारियों के लिए भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को जेल पर धावा बोलकर छुड़ाने की योजना साथियों से सलाह मशवरा करके बनाई गई। चंद्रशेखर जी द्वारा अपने साथियों से सलाह कर अपनी बनाई गई योजना के क्रम में क्रांतिकारियों को जेल से छुड़ाकर सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लाहौर के बहावलपुर रोड पर जेल के समीप ही एक बंगला किराए पर लिया गया, तथा गाड़ी की व्यवस्था की गई। चूंकि क्रांतिकारियों को जेल पर बम से धावा बोलकर छुड़ाया जाना था, अतः बम परीक्षण के लिए लाहौर में किराए के बंगले में क्रांतिकारी भगवतीचरण अपने साथ सुखदेव राज तथा विश्वनाथ वै यापन को लेकर यूनिवर्सिटी की नौका से रात्रि में रावी नदी के उस पार जंगल में गए। यहां बम परीक्षण के दौरान भगवतीशरण हाथ में बम फटने से उनके शरीर के चिथड़े उड़ गये। कहीं क्रांतिकारियों का भेद न खुल जाए इस संबंध में कोई पूंछतांछ न होने लगे इस भय से अपने पति की मौत पर उनकी पत्नी वीरांगना दुर्गा भाभी खुलकर रो भी नहीं सकी थी। उन्हें अंदर ही अंदर अपने आंसुओं को पीना पड़ा था, दो दिवस पश्चात इसी बंगले के कमरे में रखे बमों के अचानक फटने से बंगले में ही जबरदस्त विस्फोट हुआ परिणाम स्वरूप इन क्रांतिकारियों को भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने की योजना को अलविदा कहना पड़ा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रांतिकारियों की राह बापू की सत्य अहिंसा की राह के उलट बम-पिस्तौल के उपयोग द्वारा सशस्त्र क्रांति की राह थी। यद्यपि भगत सिंह ने सेन्ट्रल असेम्बली में बम विस्फोट के आरोप में न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने पर जज के समक्ष अपने दल के विस्तृत उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए क्रांति का अभिप्राय केवल बम पिस्तौल का प्रयोग नहीं अपितु व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण समाप्त करने के लिए साम्राज्यवाद के अंत करने की बात कही गई थी, लेकिन फिर भी क्रांतिकारियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध बम-पिस्तौल के प्रयोग द्वारा न केवल सशस्त्र संघर्ष छेड़ा जाता था, बल्कि जैसे को तैसे की नीति अपनाई जाती थी। यद्यपि महात्मा गाँधी एवं क्रांतिकारियों की एक रणनीति या कार्यक्रम में एक समानता थी और वह थी ब्रिटिश कानूनों को चुनौती देना। जहाँ एक ओर महात्मा गाँधी धरना, प्रदर्शनों एवं सविनय अवज्ञा जैसे आंदोलनों के माध्यम से अहिंसात्मक तरीके से ब्रिटिश कानूनों की अवज्ञा करना चाहते थे वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारी सशस्त्र हिंसा के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देना चाहते थे। दोनों पक्षों की राय बिल्कुल एक दूसरे के विपरीत थी।

यही वजह है कि क्रांतिकारियों के मन में भले ही गांधीजी के प्रति श्रद्धा भाव रहा हो, लेकिन गांधीजी की इन क्रांतिकारियों के प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं थी। इसे मृणालिनी जोशी द्वारा अपनी कृति "इन्कलाब" में वर्णित गांधी जी एवं अपनी फरारी के दौरान उनसे मिलने दिल्ली में अंसारी जी की कोठी पर गई दुर्गा भाभी की मुलाकात के शब्दों में इस प्रकार देखा जा सकता है"[12]

चंद्रशेखर जी के कहने पर दुर्गा भाभी अपनी फरारी के दौरान दिल्ली में अंसारी जी की कोठी पर ठहरे महात्मा गांधी जी से जब मिलने पहुंची तो उन्हें देखते ही - महात्मा गांधी ने समझा कि वह अपने बचाव के लिए उनके पास

आई हैं, उनसे कहा कि "आप आ ही गई हैं, तब यहां अपने आप को पुलिस के हवाले कर दीजिये, फिर बाद में पुलिस की कैद से आप को मुक्त कराने की कोशिश करूंगा" दुर्गा भाभी को गांधी जी की बात सुन मन ही मन हंसी आ गई थी, जब बाद में दुर्गा भाभी ने कहा था कि, "मैं अपने लिए नहीं आई हूं भगत सिंह राजगुरु एवं सुखदेव के लिए प्रार्थना करने आई हूं। उनके लिए कुछ कोशिश करें, आपकी एवं इरविन साहब के बीच जो समझौता होने वाला है उस इकरारनामा में आप शर्त रखें कि इन तीनों की फांसी की सजा रद्द कर दी जाए।" दुर्गा भाभी अपनी बात पूरी कह भी नहीं पाई थी कि गांधी जी तपाक से बीच में ही कहा कि, "नहीं-नहीं मैं वैसी कोई बात नहीं कर सकूंगा, क्योंकि वे सब हिंसाचारी हैं, हिंसा में विश्वास करने वालों के लिए मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा।"[13]

इस तरह हम देखते हैं कि गांधी को हिंसा में जरा भी विश्वास नहीं था, वही क्रांतिकारियों को झंडा उठाकर जेल जाने में बिल्कुल आस्था नहीं थी। ऐसी स्थिति में हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि सत्य एवं अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी हिंसा, तोड़फोड़, सशस्त्र, संघर्ष छोड़ने वाले क्रांतिकारियों का साथ देंगे? यदि महात्मा गांधी इरविन समझौते के समय भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, राजगुरु जैसे क्रांतिकारियों को छोड़ देने की पूर्व शर्त रखते तो यह महात्मा गांधी द्वारा एक तरह से हिंसा का समर्थन होता और ऐसी स्थिति में उनके अहिंसक आंदोलनों का नैतिक बल हीन होता। यही वजह कि ब्रिटिश सरकार द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ने के पूर्व गांधी इरविन के मध्य जो समझौता हुआ। इसमें हमारे इन क्रांतिकारियों को छोड़ने की बात भूलिए यहां तक लॉर्ड इरविन के समय राजनीतिक बंदियों को रिहा करने की जो सूची प्रस्तुत की गई। उसमें हमारे इन क्रांतिकारियों का नाम तक नहीं था, अर्थात इन्हें राजनीतिक बंदी तक का दर्जा नहीं दिया गया था।

संदर्भ -

1 से 7. आत्मकथा - एम.के. गांधी नवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद।

8. शहीद ए वतन राजगुरू प्रवीण भल्ला चिल्ड्रन बुक टेम्पल दिल्ली ।

9. - जैन पुखराज, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पृ. 32।

10 से 13. इन्कलाब, मृणालिनी जोशी प्रभात प्रकाशन दिल्ली।

❖ ❖ ❖